International Journal of Research in Hindi
www.hindijournal.in
ISSN: 2582-3493; Impact Factor: RJIF 5.46
Received: 01-07-2020; Accepted: 15-07-2020; Published: 02-08-2020
Volume 2; Issue 3; 2020; Page No. 15-17

समकालीन हिंदी कहानियों में बाज़ारवादी संस्कृति

मेरी रिया डिकाउथ
अतिथि अध्यापिका, सेंट जोसफ्स् कॉलेज फॉर विमन, आलप्पुषा, केरल, भारत

सारांश
मानव द्वारा अपने जीनव को तरीके से जीने की प्रविधि है – संस्कृति । 'संस्कृति' का अर्थ हुआ, 'शुद्ध किया हुआ', 'परिष्कृत एवं परिमार्जित करना' । संस्कृति एक निरंतर प्रवाहमान धारा है । वह नए संदर्भों से टकराती है और अपने को और उन संदर्भों को भी अनुकूलित करती चलती है । भारतीय संस्कृति की खास विशेषता है 'अनेकता' में 'एकता' और 'एकता' में 'अनेकता' । हड़प्पा संस्कृति से लेकर आज हम प्रौद्योगिक संस्कृति तक आकर खड़े हैं । हमारे सांस्कृतिक इतिहास में एक अनोखी परिघटना है 'भूमण्डलीकरण' । यह मूलतः विश्व पूँजीवाद का भूमण्डलीकृत रूप है । औद्योगिक क्रांति के बाद यूरोप ने भूमण्डलीकरण के पहले चक्र में प्रवेश करके दुनिया के देशों को अपना उपनिवेश बनाया । भूमण्डलीकरण के इस पहले चरण में साम्राज्यवाद फैला । दुनिया भर के देश गुलाम हुए और उनका दोहन शोषण हुआ । उनमें आज़ादी की ल़ड़ाई लड़ी गई । इसी प्रक्रिया में उन समाजों में आधुनिकीकरण की प्रक्रियाएँ शुरु हुई । इसे भूमण्डलीकरण का पहला चक्र या चरण कहा जा सकता है । आज हम भूमण्डलीकरण के तीसरे चरण पर हैं । भूमण्डलीकरण जनतांत्रिक हिस्सेदारी का खात्मा करते हुए सशक्त बना । भूगोल को एक मण्डी बनाना उस्का प्रथम उद्देश्य रहा है । भूमण्डलीकरण का सबसे प्रमुख मुद्दा है बाज़ारवाद । समकालीन कहानियों में बाज़ारवादी संस्कृति का चित्रण काफी ज़ोर से हुआ है ।

मुख्य शब्दः कहानियों, भूमण्डलीकरण, आधुनिकीकर, संस्कृति

प्रस्तावना
आज हमारे लिए 'स्वदेशी' शब्द बांसी रोटी की तरह बन चुका है जो खाने की मेज़ से हटा दिया गया है । कुछ देश विकसित माने जाते हैं । उनका ढोल सारी दुनिया में गूँज उड़ता है, क्योंकि वे विश्व शक्तियाँ हैं । कहा जा रहा है कि हमें भी उनके सदृश्य बन जाना है । इसके पक्षधर तमाम अच्छी बातों को भूमण्डलीकरण से जोड़ने का प्रयास कर रहा है । भूमण्डलीकरण के कई रूप हैं । बाज़ारवाद इन्हीं में से एक है ।

भूमण्डलीकरण
'भूमण्डलीकरण' की घटना बीसवीं शताब्दी की खास विशेषता मानी जाती है । पिछले दो दशकों से भारतीय जन जीवन को सर्वांगीण रूप से प्रभावित करनेवाली मुख्य घटना रही – 'भूमण्डलीकरण' । भारत में उदारीकरण की शुरुआत सन् 1991 में नरसिंह राव सरकार ने की । तत्कालीन वित्त मंत्री मनमोहन सिंह ने, लोकसभा में वैश्वीकरण की वकालत की थी । तब से लेकर हमारे विकासशील भारत में भूमण्डलीकरण, उदारीकरण एवं निजीकरण की प्रक्रियाएँ तेज़ी से कार्यान्वित हुई है और आज हो रही हैं । 'विश्वग्राम' एवं 'वसुधैवकुटुंबकम' के मोहक नारे को लेकर वह जनता को अपने वश में कर लेता है । भूमण्डलीकरण का मुख्य लक्ष्य सांस्कृतिक विविधता का विघटन है । जिस 'मानव कल्याण का दावा वह करता है उससे उसका कोई लेना–देना नहीं है । भूमण्डलीकरण पूरे विश्व को एक ही संस्कृ ति एवं एक ही जीवन–शैली में बाँधना चाहता है । लेकिन वह जिस एक संस्कृति और जिस जीवन शैली की बात कर रहा है, वह है अमेरिकन जीवन शैली । इसी प्रकार की संस्कृति को एकल संस्कृति अथवा 'मोनो कल्चर' कहती है । उपभोक्तवादी संस्कृति इसका एक अंग है ।

बाज़ारवाद या बाज़ारवादी संस्कृति
आदमी की जीवन शैली संस्कृति को प्रभावित करती है । उपभोक्तावाद हमारी जीवन शैली से खास तौर से जुड़ा हुआ है । इसलिए 'उपभोक्तावादी संस्कृति' शब्द का प्रयोग हो रहा है । बाज़ारवाद एवं उपभोग संस्कृति का यह दौर वर्तमान पूँजीवाद का है । यह देशी उत्पादों एवं देशी बाज़ारों का सर्वनाश ही करता है । यहाँ इतिहास एवं परंपरा केलिए कोई स्थान नहीं है । उसकेलिए सबकुछ बिकाऊ की चीजें हैं । जीवन के हर कोने का वस्तुकरण इसका लक्ष्य है । आज दुनिया बाज़ार द्वारा संचालित है । यहाँ तक की हमारी अर्थव्यवस्था पर बाज़ार का दबाव बढ़ता रहा है । 'कल तक जो प्राकृतिक संसाधन, गरीब से गरीब व्यक्ति को उपलब्ध थे, मसलन दृ खुली हवा में वह साँस ले पाता था, नदी, झरने और सरोवर के स्वच्छ पानी से वह अपनी प्यास बुझाता था, हज़ारों साल से जिस बीज की वजह से वह खेतों में अन्न उगता था, आज उसी प्राकृतिक संपदा का भूमण्डलीकरण के नाम पर निजीकरण होता जा रहा है ।.... बौद्धिक संपदा के अंतर्गत ये बीज, उद्भिज यहाँ तक कि आदमी की नस्ल का भी ये कीमत लगा रहे हैं और बाज़ार में खरीद– बेच का सामान बनाते जा रहे हैं ।'[1]

समकालीनता एवं समकालीन कहानी
समकालीन' शब्द अंग्रेज़ी के 'कटंपोरेरी' शब्द का समानार्थी शब्द है जिसका अर्थ है अपने समय का यानी 'समसामायिक' । यह भी कहा जा सकता है कि 'समय के साथ चलनेवाले समकालीनता एक नदी के समान है जो हमेशा प्रवाहन है । यह ठहरी हुई नहीं है । यह गतिशील दृष्टि है। समकालीनता के निर्माण में समकालीन परिवेश की बड़ी भूमिका है । समकालीन हिंदी साहित्य अपने समय की समस्याओं और चुनौतियों का अंकन करता है । 'प्रतिरोध' समकालीन हिन्दी का मुख्य

स्वर है । दमितों का प्रतिरोध आज कई 'वाद' और 'विमर्श' के रूप में उभरकर आया है । यह सच है कि समकालीन साहित्य या कहानी कोई भी विचारधारा का प्रश्रय नहीं करता । लेकिन अनेक विचारधारावों को अपने में समाहित किया है । जैसे गाँधीवाद, मार्क्सवाद, नवउपनिवेशवाद, नारी विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श आदि। समकालीन कहानी ने समाज की कई समस्याओं को खुलेआम प्रस्तुत किया है । ये सब समकालीन कहानी के अंतर्गत उनकी प्रवृत्तियों के रूप में उभरकर आए हैं । इन प्रवृत्तियों में से एक है बाज़ारवाद । समकालीन कहानीकारों ने इस पहलू को अपनी कहानियों में उसकी समस्त वास्तविकताओं के साथ उतारने की कोशिश की है ।

समकालीन हिन्दी कहानियों में बाज़ारवाद

स्वयं प्रकाश की 'बलि' कहानी में गाँव में शहरीकरण एवं तत्पश्चात वहाँ की चीज़ों का निर्यात करने के बारे में संकेत दिया गया है । "अब जो कुछ अच्छा था...सब बेचे जाने केलिए था । अपने उपभोग केलिए नहीं । न दूध न माछ । न सब्जी न भात । अब रुपये थे और भस्मासुरी इच्छाएँ।...."[2] सच कहो तो "....यह आरम्भ था समाज के बाज़ार बनने की प्रक्रिया का ।....यदि नदि में मछली थी, पेड़ पर फल, आस्मान में परिन्दा और धरती में जड़....तो ज़रूर उनकी भी कोई कीमत होगी... ।"[3] स्वयं प्रकाश जी की 'संधान' कहानी में भी बाज़ारवादी संस्कृति के प्रमाण मिलते हैं । कहानी का विश्वमोहन जी अपने परिवार के साथ महानगर घूमने चलते हैं । वहाँ पहुँचकर उन लोगों ने एक जगह चाइनीज़ फुड खाया जोकि जाहिर है पहली बार, तो खाते–खाते ही वह मूँह के साथ–साथ स्मृतियों में भी घुस गया । फिर अगले दिन एक जगह पिज्जा और उसके अगले दिन वर्गर । विश्वमोहन जी नहीं चाहते थे कि 'उनके बच्चे इन वस्तुओं का जिक्र आते ही जोकि अब हमारे देश में खूब आएगा दृ अपने आपको गँवार और अभाग समझने लगे ।'[4] जब विश्वमोहन जी के दोस्त एवं परिवार घूमने केलिए विश्वमोहन जी के छोटे से शहर में आ जाते हैं तो दोस्त के बच्चे सब्जी की बाड़ी देखकर आश्चर्य हो जाते हैं । आज से पहले उन्होंने बैंगन–टमाटर के पोधे कभी नहीं देखे थे । उन्हें तो यह भी पता नहीं था कि ये चीज़ें पेड़ पर लगती है या वेल में । हर देश एक बाज़ार बननेवाले इस सामाजिक दौर में सब पैकट में मिलते हैं । हर चीज़. फूल, सब्जी, यहाँ तक कि प्यार भी पैकट में मिलने की नौबत आ गयी है । सुधा अरोड़ा की 'महानगर की मैथिली' में इसकी ओर संकेत है । कहानी की माँ (चित्रा) की सहकर्मी मिसेज माथुर कहती है – "...अरे बच्चे को पैदा होते ही पाउडर के दूध की भी आदत डालो.... ।"[5] बच्चों को माँ के दूध के बदले पाउडर के दूध देना तो आज आधुनिकता का पर्याय है । दूध के पाउडर भी बाज़ार में काफी उपलब्ध हैं । लेकिन इसमें माँ का प्यार की मिठास होगी ..? यह सोचनेवाली बात है ।

नीलाक्षी सिंह की कहानी 'स्वाँग' में आज की बाज़ारी नीति के बारे में चर्चा हुई है । कहानी का स्वामी एक अनूठा आविष्कार का निर्माण करता है। लेकिन निहायत फटीचर पृष्ठभूमी पर, यानी कि एक सस्ते चॉल के मामूली शक्लो–सूरत वाले कमरे में संपन्न हुआ यह आविष्कार सौ वाट के बल्ब की चकाचौंध ही जुटा पाया । वह अपनी क्षमता या दिमाग की खूबी को संसार के सामने रख न पाये । इस संदर्भ में चित्रा का कथन सराहनीय है – "कब तक चलेगी तुम्हारी तलाश ? कब मिलेगी नौकरी ? कोई जवाब नहीं ना इसका । उस रास्ते को तलाशो स्वामी, जो जाता है कामयाबी की ओर । .... आज की दुनिया में टैलेंट सबके पास है । पर सफल वही है जो इसे कैश कर ले । कैश.... ।.... अपनी बुद्धि को बेचो । दिमाग को । ....दिमाग से हर भद्दी चीज़ को खूबसूरत बना सकते हो तुम । अपनी जिस ईजाद की कहानी तुम मुझे सुनाते हो और जो मेरी समझ में उतना नहीं आता, उसे दुनिया को बताओ....चमक–दमक के साथ, तो तुम्हारा कितना नाम होगा स्वामी... ।"[6]

संजय की कहानी 'लिटरेचर' में भी कैश करनेवाली बात को बताया है । कहानी के दीपक को जंगल की जड़ी बूटियों के बारे में थोड़ी–बहुत जानकारी है । लेकिन कंपनीवाले उसको मौका देखकर इस्तेमाल कर देना चाहते हैं । उनका कहना है – "आप उन जड़ी–बूटियों को हमारी कंपनी जेजे के थ्रू विशिष्ट उत्पादन के रूप में ले आइए ।... देखते जाइए कि उसे हम कैसे दिखाते हैं कि इन दवाओं के परीक्षण विश्व की आधुनिकतम लैब में हुए हैं और उन्होंने इसे सर्टीफाई किया है । जीने और भोगने की लिप्सा की मारी यह जनता पारम्परिक दवाओं से ऊबकर हर्बल या यू कहे ट्राइबल्स वेल्द पर लौट रही है, हम लौटाएँगे भी, उसे कैश भी करेंगे आपके सहयोग से ।"[7]

बाज़ार के ज़माने में हर चर एवं अचर वस्तु सिर्फ 'माल' है । हर चीज़ केलिए 'प्राइस् टाग' लगाया हुआ है । असगर वजाहत की 'गिरफ्त' कहानी में मल्लू नामक पात्र का प्रसंग है । जो इसकी गहराई की ओर जाता है –

डॉक्टर : "गीताजी, यह आदमी खून बेचता है ।"
गीताजी : "वेरी गुड..... "
डॉक्टर : "खून ही नहीं, यह आँख भी बेच सकता है ।"
मल्लू : "पचास हज़ार"
डॉक्टर : किडनी भी बेचता है ।"
मल्लू : "एक लाख"
डॉक्टर : "दिल चाहे तो वह भी... ।"
मल्लू : "दो लाख ।"
डॉक्टर : "मतलब यहाँ हर चीज़ बिकती है.... "[8]

सूर्यबाला की कहानी 'दादी और रिमोट' में टी.वी. के प्रभाव से दादी की ज़िन्दगी में आनेवाले बदलाव के बारे में बताया गया है । कहानी में दादी को गाँव से महानगर में लाया जाता है । वहाँ अपने बेटे के घर में उसकी साथी बनती है, 'टी.वी' । यक्ष–किन्नर, नाग–गंधर्व, तीनों लोक, चौदहों भुवन से लेकर संपूर्ण ब्रहंमाड, इस चौखूँटी 'पेटी' (बक्से) में । दादी केलिए यह 'अलादीन का चिराग' के समान था । उपभोग संस्कृति के भीतर जानेवाले हमारे सामने, बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ इसी 'अलादीन का चिराग' रखा हुआ है । हम इसके पीछे बच्चों की तरह भाग रहे हैं । गलत या सही के बारे में वे नहीं सोचते । कहानी की दादी टी.वी में आनेवाले हर किसी को और हर एक घटना को सच मानने लगी । यही अवस्था है हमारेलिए भी । हम और बाज़ार के बीच सिर्फ एक 'बटन' दबाने की दूरी ही बची है । कितना भी दूर भागो, इससे मुक्ति पाना आज मुश्किल बन चुका है ।

असगर वजाहत की 'श्री. टी.पी. देव की कहानियाँ' (तीसरी कहानी) में ऐसे ही उपभोक्ता को दर्शाया गया है । टी.पी. देव पार्क में आकर दो बेचों पर, एक के बाद एक में बैठने की कोशिश करता है । कभी हाथ रखता है, कभी पाँव, कभी दोनों बेचों पर खड़ा हो जाता है फिर कूद पड़ता है। यहाँ उपभोक्ता किसी एक से खुश नहीं हो पाता। उसको अतिआवश्यक, अवश्यक एवं अनावश्यक चीज़ों का अंतर नहीं मालूम है । पड़ोसी को दिखाने या सहकर्मियों के सामने श्रेष्ठ बनने केलिए, या फिर खुद मॉडर्न बनने के चक्कर में वह बाज़ार के चंगुल में अपने को खुद फंसा लेता है। उदय प्रकाश की 'पॉल गोमरा का स्कूटर' कहानी का पॉल गोमरा इस चंगुल में पड़कर, एक स्कूटर खरीद लेता है । वह इस परिवर्तित काल से संवाद बनाये रखना चाहता है, समकालीन होना चाहता है। पॉल गोमरा को स्कूटर तो दूर, एक साइकिल तक चलाना नहीं आता था । इसी के कारण वह अपने को किसी प्राकृतकालीन आदिवासी महसूस करता है, जिनके कन्धों पर धनुष–बाण टँगा है और स्कूटर को देखकर एक जानवर समझ लेता है और उसपर अपना अधिकार जमा लेता है । 'बाज़ार अब सभी चीज़ का विकल्प बन चुका था । शहर, गाँव, कस्बे बड़ी तेज़ी से बाज़ार में बदल रहे थे । हर घर दूकान में तब्दील हो रहा था । बाप अपने बेटे को इसलिए घर से

निकालकर भगा रहा था, कि वह बाज़ार में कहीं फिट नहीं बैठ रहा था । पत्नियाँ अपने पतियों को छोड़–छोड़कर भाग रही थी क्योंकि बाज़ार में उनके पतियों की कोई खास माँग नहीं थी । औरत और मर्द कमाऊ का महान चकाचक युग आ गया था ।"[9]

संजीव की कहानी 'ब्लैक होल' के पतिदृपत्नी के बीच का संवाद से यह जाहिर है कि हम उपभोक्तावादी संस्कृति एवं बाज़ारवाद से कितने गहरे से प्रभावित है । संवाद का यह प्रसंग यहाँ प्रस्तुत है –

"...पत्नी : सुन लिया ? मैंने कोई लाख–दो लाख नहीं सिर्फ पचीस रुपए माँगे थे । मिसेज ग्रेवाल की तरह वाशिंग मेशीन माँगी होती तो. .....।

पुत्र : उनके यहाँ कलर्ड टी.वी. भी है, वी.सी.आर. भी । है न माँ ?

पत्नीः वहीं क्यों । फ्रीज, एक से एक कुकिंग डिवाइसेज, कूलर, गीजर, वैकुअम क्लीनर– क्या नहीं है ? जो बाकी है, वो भी आ जाएगा ।

पति : तो ?

पत्नी : (समर्पिता के सलोने अन्दाज़ में) सुनो टी.वी में एक से एक उम्दा चीज़ों का विज्ञापन रहता है, कितनी सुविधा हो जाती है उनसे । तुम ज़रा

ट्राई करो न । प्लीज़ ।

पति : मिसेज ग्रेवाल या टी.वी वाले यह नहीं बताते कि पैसे कहाँ से आएँगे इन्हें खरीदने केलिए ?

पत्नी : (तुनककर) वहाँ से, जहाँ तुम हो ।

पति : वहाँ से..... ?

पत्नी : देखने की नज़र और उगाहने की कूबत चाहिए ।....."[10]

आज जनता उपभोगवादी मानसिकता से युक्त है । अब पूरा बाज़ार उनके सामने खुला है और खरीदारी केलिए उधार के रूप में काफी ऋण भी मिल रहा है तो क्यों हिचकिचाना है । अपने जीवन को अधिक आसान एवं खुशहाल बनाने केलिए वह उत्सुक है । इसी मानसिकता उसको हर एक चीज़ की खरीदारी करने केलिए प्रोत्साहन देती है । आज सबकुछ बाज़ार तय करता है । प्रत्येक व्यकति की माँग को समझकर बाज़ार अपना माल निकालता है । सब ब्रांड के हिसाब से बाज़ार में आ जाते हैं । सिर्फ वस्तुएँ ही नहीं, बल्कि खुद मनुष्य विशेषकर, स्त्री, धर्म आदि की भी ब्रांड के अनुसार बिक्री चल रही है । 'प्रतिरोध' के स्वर लेकर चलनेवाला समकालीन साहित्य भी इसके खिलाफ खड़ा है । समकालीन कहानीकारों ने इस विषय को ज़बरदस्त रूप से पकड़ा है ।

संदर्भ सुची

1. प्रभा खेतान – बाज़ार के बीच–बाज़ार के खिलाफ – पृ : 32
2. स्वयं प्रकाश – आदमी जात का आदमी–बलि – पृ : 75
3. वहीं – पृ : 76
4. स्वयं प्रकाश – संधान – पृ : 09
5. सुधा अरोड़ा – महानगर की मैथिली – पृ : 194
6. नीलाक्षी सिंह – जितनी मुट्ठियों में सुराख था....स्वांग – पृ : 55
7. संजीव – संजीव की कथा यात्रा (तीसरा पड़ाव) लिटरेचर – पृ : 44
8. असगर वजाहत – सब कहाँ कुछ दृ गिरफ्त – पृ : 36
9. उदय प्रकाश – पॉल गोमरा का स्कूटर – पृ : 39
10. संजीव – संजीव की कथा यात्रा (दूसरा पड़ाव) ब्लैक होल पृ : 255–256